Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 1, Issue – 2015

सामाजिक समानता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का अधिकार विधेयक

डॉ. अविनाश पारीक*

शोध सार (Abstract)

शिक्षा व्यक्ति, समाज और देश की पहली आवश्यकता रही है। शिक्षा के अभाव में ये तीनों प्रगति की दिशा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत को विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। अतः आज भारत देश के लिए यह आवश्यक हो जाता हैं कि सामाजिक समानता की दृष्टि से वह अपनी वर्तमान शैक्षिक नीतियों में यथाशक्ति परिवर्तन करें।शिक्षा की मौलिक अधिकार की राज्य द्वारा आपूर्ति करने के प्रण की रूपरेखा को सर्वाधिक सरल रूप में पश्चिम की फोर एज की अवधारणा उपलब्धता (Abailability), प्राप्यता (Accessibility), मान्यता (Acceptability) व अनुकूलता (Adaptability) की अवधारणा स्पष्ट करती है। मेरे विचार से फोर एज में एक पाँचवा ए भी जुड़ना आवश्यक है जो उत्तरदायित्व (Accountability)अर्थात संलग्न संस्थाओं की जवाबदेही।

जब संविधान मूर्त रूप ले रहा था उस समय बालक–बालिकाओं के लिए एक ऐसी ही शिक्षा प्रणाली की अनुकल्पना की गई थी। संविधान का अनुच्छेद 45 कह रहा था कि अब से दस वर्ष पश्चात् भारत का बाल–समुदाय चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर रहा होगा। उसके कई वर्ष पश्चात् जब अंततः भारत की संसद ने शिक्षा के अधिकार का अधिनियम 4 अगस्त, 2009 को पारित कर दिया। अनुच्छेद 21 (अ) में भारत के संविधान में कहा गया है कि भारत में 6–14 वर्ष के बालक–बालिकाओं को सरकार निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगी। यह अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 से भारत के सम्पूर्ण राज्यों में लागू हो चुका है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना को 'भारत की शिक्षा योजना' नाम दिया। शिक्षा को त्वरित और समग्र विकास हासिल करने का एक केन्द्रित साधन बनाने के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई।

सामाजिक समानता की दृष्टि से शिक्षा का अधिकार विधेयक स्वतन्त्र सामाजिक अवधारणा का प्रतीक है। शिक्षा के द्वारा समाज से वंचित दलित एवं पिछड़े वर्ग की शिक्षा में समानता का खर्च स्वयं सरकार वहन करेगी।

*अधिष्ठाता एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कला एवं सामाजिक विज्ञान संकाय, आई.ए.एस.ई. मान्य विश्वविद्यालय, गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर (राजस्थान)। ***E-mail Id:*** avinash.pareek12@gmail.com

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-3501**

सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों के बालक–बालिकाओं को केन्द्रीय विद्यालयों, सैनिक विद्यालयों, अंग्रेजी माध्यम की कॉन्वेन्ट विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों और निजी विद्यालयों में प्रवेश देने के लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने होंगे।

जॉन डेरेज व अमर्त्य सेन के अनुसार अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के अधिकार को सर्वप्रथम लागू कर उसके ध्येय को प्राप्त करने में हिमाचल प्रदेश का उदाहरण विशेष महत्त्व रखता है। संक्षेप में यदि कहा जाएं तो यह राजनैतिक इच्छा व सहभागिता के मेल से उपजा था। हिमाचल प्रदेश की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी महत्व रखती हैं।[11] यहाँ सहभागिता की परम्परा रहीं हैं, स्कूली शिक्षा का बच्चों के लिए जो महत्त्व है उसे यहाँ सभी सामाजिक मूल्यों की तरह मानते हैं, जनता ने सरकार पर बेहतर शिक्षा व्यवस्था के लिए अक्सर दबाव बनाया है, शिक्षकवर्ग व विद्यार्थिगणों में बहुत अधिक सामाजिक दूरी यहाँ नहीं रही हैं, पितृसत्तात्मकता की भावनाएँ यहाँ बहुत प्रबल नहीं रहीं है। राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाने वाला व्यय (शिक्षा पर) यहाँ शेष देश के राज्यों के मुकाबलें दुगुना है।

शिक्षा का अधिकार विधेयक को व्यापक एवं गुणवत्तापूर्ण तरीके से लागू करने के लिए शिक्षा की किसी अन्य शाखा की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि हम निःशुल्क और अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा के संवैधानिक संकल्प को पूरा करना चाहते हैं। अवरोधन और अपव्यय, सस्ते स्कूल भवन, बहुकक्षीय शिक्षण, पुराने स्कूलों को नयी शिक्षा के आदर्श के अनुसार परिणत करना आदि कुछ ऐसे विषय हैं, जिन पर शीघ्र ही शोध करने की आवश्यकता है। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य शिक्षा संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को इन विषयों पर विधिपूर्वक शोध करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को बालक की अन्तर्निहित प्रतिभा के प्रकाशन का उत्कृष्ट माध्यम निरूपित किया है। शिक्षा केवल सूचनाओं का संकलन मात्र न हो, शिक्षा जीवन्त होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा जितनी बेहतर होगी, समाज में मनुष्य का जीवन उतना ही गौरवमय, शान्तिपूर्ण एवं उन्नत होगा।

शिक्षा व्यक्ति, समाज और देश की पहली आवश्यकता रही है। शिक्षा के अभाव में ये तीनों प्रगति की दिशा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत को विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। अतः आज भारत देश के लिए यह आवश्यक हो जाता हैं कि सामाजिक सामानता की दृष्टि से वह अपनी वर्तमान शैक्षिक नीतियों में यथाशक्ति परिवर्तन करें। संयुक्त राष्ट्र संघ की ओवरसीज विकास परिषद् के तत्वावधान में विकास का माप, मानव विकास से हो रहा है, जिसको तीन चरणों में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार से आँका जा रहा है। प्रसिद्ध सामाजिक मानव विकास प्रतिवेदक स्व. मकबूल उल हक, प्रो. अमर्त्य सेन, प्रो. यशपाल तथा डॉ. ए.पी. जे. अब्दुल कलाम जैसे लोग आज यह स्वीकार कर रहे हैं कि भारत में सामाजिक

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-3501**

समानता के विकास में सबसे बड़ी समस्या शिक्षा है।[1]

हम अपने वर्तमान स्वरूप पर चिन्तन एवं मनन करे तो सच यह हैं कि अभी हम पूर्ण रूप से अपने विद्यार्थियों (विशेशकर ग्रामीण क्षेत्रों एवं मलिन बस्तियों के नगरीय क्षेत्र) को शत–प्रतिशत विद्यालयों में लाने में सक्षम नहीं हो पाये हैं। सरकार एवं जनसमुदाय द्वारा चलाया जा रहा सर्वशिक्षा अभियान, जिसका उद्देश्य सभी बच्चों का नामांकन, कक्षा 5 तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा 2011 तक प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर बालक–बालिका एवं सामाजिक अन्तर को समाप्त करना, सार्वभौमिक टकराव का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के विद्यालयों में बच्चों का पलायन (ड्राप–आउट) एक गम्भीर समस्या है। पलायन में अभिभावकों की सोच सकारात्मक न होना, प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ पहले से पीढ़ी–दर–पीढ़ी का निरक्षर होना, बालकों का शिक्षा के प्रति अभिरूचि का न होना, विद्यालयों में अध्यापकों का नियमित न आना, स्वास्थ्य, गरीबी, खेतीबाड़ी के कार्य आदि बालकों के पलायन को प्रभावित कर रहा हैं।

पिछले अनेक वर्षो से समाज में शिक्षा के सभी चरणों पर गिरता हुआ स्तर गहन चिन्ता का कारण बन गया है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा अन्य सभी चरणों की शैक्षिक गुणात्मकता को बुरी तरह से प्रभावित किया करती है। दुर्भाग्यवश, हमारे प्राथमिक विद्यालयों के स्तर को लेकर शिक्षाविदों ने, कुछ अपवादों को छोड़कर, लगभग कोई अनुसंधान कार्य नहीं किया है।

इंटरनेशनल एसोसिएशन फार एजूकेशनल अचीवमेंट (आई.ई.ए.) के अध्ययन से यह महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।[2] सन् 1970 के प्रारम्भ में, हिन्दी भाषी राज्य सरकारों तथा नगरपालिका स्कूलों पर आधारित इस अध्ययन में कहा गया हैं कि 10 वर्ष तथा 14 वर्ष की आयु के बालकों की पठन–क्षमता और अर्थग्रहण क्षमता आश्चर्यजनक रूप से कम हैं। अध्ययन में यहाँ तक कहा गया है कि 14 वर्ष के बहुत से बालकों को तो अर्ध साक्षर माना जाना चाहिए। यही स्थिति गणित और विज्ञान के विषयों की है। साइमन्स ने भी इस विषय पर अपनी शोध–समीक्षा में लिखा है कि भारत में बच्चों के सीखने की गति इतनी कम है कि आगे की शिक्षा के लिए स्व–निर्भर बनने की उनसे आशा ही नहीं की जा सकती है।[3]

वर्तमान तकनीकी युग में सैटेलाइट के द्वारा प्रायोगिक दूरदर्शन शिक्षण और रेडियों द्वारा मातृभाषा पढ़ाने से सम्बन्धित एक अध्ययन से भी यही निष्कर्ष निकलता हैं कि प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को पढ़ने–लिखने की गति बहुत कम है। पढ़ने के साथ वे समझ पाने में भी बहुत कठिनाई अनुभव करते हैं।[4] पाँच वर्ष की शिक्षा प्राप्त किसी बालक की पढ़ाई के उपयोग के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम हैं, परन्तु इतना सुस्पष्ट है कि पाँचवीं पास विद्यार्थी के पास पठनीय सामग्री बहुत कम होती है और वह अपनी उस पढ़ाई का शायद ही कहीं उपयोग कर पाता हो। विकास योजनाएँ, राजकीय विज्ञप्तियाँ आदि ऐसी भाषा और रीति से छपी होती हैं कि वे उन्हें समझ ही नहीं पाते। उनकी अनवरत शिक्षा के लिए न कोई पाठ्यक्रम है न कोई संस्था। चारों तरफ का वातावरण तो साक्षरता रहित होता ही हैं। अतः प्राथमिक स्तर पर सीखे हुए कौशलों को उपयोग में लाने के अवसर न मिलने के कारण वे उन्हें भूल जाते है। चुनौति हमारे सामने बिल्कुल स्पष्ट है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर को उठाना और सीखे हुए कौशलों के उपयोग की व्यवस्था करना आवश्यक है।

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा आन्दोलन से प्रेरित होकर संविधान लागू होने से ''दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए'' प्रबन्ध करने का दायित्व राज्यों की सरकारों को सौंपा था।[5] संविधान के आदेश की पूर्ति के लिए यद्यपि कहने को प्रारम्भ से ही प्रयास किए जाते रहे हैं परन्तु ''दस वर्ष के अन्दर'' कार्यक्रम को पूरा करने की ''ईमानदार कोशिश'' कभी नहीं की गयी, परिणाम सामने है। सन् 2000 तक 6–14 आयु वर्ग के लगभग 67 प्रतिशत बच्चों के लिए ही शिक्षा का प्रावधान हो सका है। अब सरकार ने यह कहना शुरू कर दिया हैं कि सभी बच्चों को पूर्णकालिक विद्यालय में लाना संभव ही नहीं है। अतः जो बच्चें विद्यालय नहीं जा सके, या जिन्होंने विभिन्न कारणों से विद्यालय छोड़ दिया उनके लिए ''अनौपचारिक शिक्षा'' की व्यवस्था की जाए।

शिक्षा की मौलिक अधिकार की राज्य द्वारा आपूर्ति करने के प्रण की रूपरेखा को सर्वाधिक सरल रूप में पश्चिम की फोर एज की अवधारणा उपलब्धता (Abailability), प्राप्यता (Accessibility), मान्यता (Acceptability) व अनुकूलता (Adaptability) की अवधारणा स्पष्ट करती है।[6] उपलब्धता के अन्तर्गत देश के सभी बालक–बालिकाओं को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान आता है। साथ ही इसके लिए आवश्यक ढ़ाँचा भी उपलब्ध होना चाहिए। जैसे उपयुक्त भवन, सामग्री, पाठ्यपुस्तकें, प्रशिक्षित शिक्षाकर्मी आदि। प्राप्यता से तात्पर्य हैं कि यह सब भौतिक रूप से दूर स्थित न हो व सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से भी प्राप्य हो जैसे उन्हें पाने के मार्ग में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पिछड़ापन बाधक न बन जाएं। मान्यता का अर्थ हैं कि बालक व बालिकाओं को जैसे वे हैं वैसे ही स्वीकार किया जाए, वे जिस भी संस्कृति से हो उन्हें सहज मान्यता दी जाए। शिक्षा ऐसी हो जो किसी भी धार्मिक–सांस्कृतिक परिवेश से आए बाल–वृन्द को मान्य प्रतीत हो। उनकी विरासत व परिवेश पर कुठाराघात न करती हो। अंततः अनुकूलनता शिक्षा का क्षेत्रीय व तत्कालीन मुद्दों के साथ सामंजस्य होना। जाहिर है वह सीमित नहीं हो सकती, न होनी चाहिए किन्तु वह सन्दर्भों की नितान्त अनदेखी करने वाली भी न हो, उसी में उस शिक्षा का मूल्य, महत्त्व व अर्थ छिपा है। मेरे विचार से फोर एज में एक पाँचवा ए भी जुड़ना आवश्यक है जो उत्तरदायित्व (Accountability)अर्थात संलग्न संस्थाओं की जवाबदेही।

जब संविधान मूर्त रूप ले रहा था उस समय बालक–बालिकाओं के लिए एक ऐसी ही शिक्षा प्रणाली की अनुकल्पना की गई थी। संविधान का अनुच्छेद 45 कह रहा था कि अब से दस वर्ष पश्चात् भारत का बाल–समुदाय चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर रहा होगा। उसके कई वर्ष पश्चात् जब अंततः भारत की संसद ने शिक्षा के अधिकार का अधिनियम 4 अगस्त, 2009 को पारित कर दिया। अनुच्छेद 21 (अ) में भारत के संविधान में कहा गया है कि भारत में 6–14 वर्ष के बालक–बालिकाओं को सरकार निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगी। यह अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 से भारत के सम्पूर्ण राज्यों में लागू हो चुका है। इस कानून में कई क्रान्तिकारी उपाय किए गए है। जिनमें निजी स्कूलों में निर्धन एवं वंचितों के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटों का आरक्षण और बच्चों को प्राथमिक स्तर तक हर साल की परीक्षाओं से मुक्ति शामिल है। अधिनियम में हर तरह की

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

विकलांगता से प्रभावित बच्चों की शिक्षा का प्रावधान भी किया गया है।[7] भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अधिनियम के पीछे की भावना को प्रकट करते हुए इसे शिक्षा को सामाजिक भेद की सभी बाधाओं को लांघकर सभी तक पहुँचाने की कटिबद्धता का स्वरूप बताया। साथ ही कहा कि शिक्षा काशल, ज्ञान, मूल्य व ऐसी प्रवृत्ति बनाने वाली होनी चाहिए जो भारत में जिम्मेदार व सक्रिय नागरिकों का निर्माण करें।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना को 'भारत की शिक्षा योजना' नाम दिया। शिक्षा को त्वरित और समग्र विकास हासिल करने का एक केन्द्रित साधन बनाने के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। इस योजना में शिक्षा के ऊपर से नीचे तक के सभी क्षेत्रों को शामिल करते हुए इसकी मजबूती के लिए एक विस्तृत रणनीति पेश की गई।[8] यह रणनीति शिक्षा तक सर्वव्यापी साक्षरता और ज्ञान आधारित औद्योगिक विकास के जरिए बनाई गई जिससे भारत विश्व के शीर्ष देशों के साथ विश्वसनीय तरीके से अगली कतार में शामिल हो सके और यह सुनिश्चित करने की चुनौती में सफल हो सके कि हर किसी ने शिक्षा तक पहुँच बना ली हैं और उनकी कार्यप्रणाली में दक्षता का विकास हुआ है।

शिक्षा पर किया जाने वाला सरकारी खर्च सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6 प्रतिशत हैं। प्राथमिक शिक्षा की सर्वव्यापकता को अनौपचारिक शिक्षण प्रणाली, स्वयं सहायता एजेंसियों, प्रारंभिक बालक शिक्षा केन्द्रों के लिए केंद्रीय अनुदान, यूनिसेफ की मदद से चलाई जाने वाली पाठ्यक्रम सुधार परियोजनाओं आदि के जरिए सहयोग मिलता है। इसके अलावा एन.सी.ई.आर.टी. जैसे राष्ट्रीय संस्थान भी शैक्षणिक प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों की रूपरेखा तय करने में मदद करते हैं।

शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में जानना उतना ही आवश्यक है जितना यह जानना कि शिक्षा को भी परिवर्तन की आवश्यकता हो सकती है व उसका उद्धार भी सामाजिक सोच व प्रणाली में परिवर्तन पर आधारित हो सकता है। यह मुद्दा तब और भी महत्त्वपूर्ण रूप ले लेता है जब ध्येय एक विशाल देश के बच्चों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कराना हो। एक ऐसा देश जो कालांतर से सांस्कृतिक विभिन्नताएँ लिए हुए है, सामाजिक विषमताओं से ग्रस्त है जाति, वर्ग व लैंगिकता के आधारों पर, जिसका एक इतिहास रहा है। इतने संघर्षमय व विस्फारित इतिहास वाले देश के बच्चों को अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करने का प्रण का मार्ग सरल तो बिल्कुल नहीं हो सकता। किन्तु समस्याएँ इतिहास के तत्व ही नहीं हैं, त्रुटितत्व इस संकल्प के क्रियान्वयन में भी कम नहीं है।[9]

सामाजिक समानता की दृष्टि से शिक्षा का अधिकार विधेयक स्वतन्त्र सामाजिक अवधारणा का प्रतीक है। शिक्षा के द्वारा समाज से वंचित दलित एवं पिछड़े वर्ग की शिक्षा में समानता का खर्च स्वयं सरकार वहन करेगी। सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों के बालक–बालिकाओं को केन्द्रीय विद्यालयों, सैनिक विद्यालयों, अंग्रेंजी माध्यम की कॉन्वेन्ट विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों और निजी विद्यालयों में प्रवेश देने के लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने होंगे। सरकारी एवं गैर–सरकारी विद्यालय की प्रबन्ध एवं विकास समिति में कम से कम तीन–चौथाई सदस्य माता–पिता व संरक्षक होंगे। जिसमें वंचित व सामाजिक दृष्टि से पिछड़े अभिभावकों को प्रबन्ध समिति में लेना समानुपातिक प्रतिशत में अनिवार्य होगा।

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501

किसी भी बालक को न तो किसी कक्षा में रोका जायेगा और न ही प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने तक विद्यालय से निष्कासित किया जायेगा।[10]

जॉन डेरेज व अमर्त्य सेन के अनुसार अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के अधिकार को सर्वप्रथम लागू कर उसके ध्येय को प्राप्त करने में हिमाचल प्रदेश का उदाहरण विशेष महत्त्व रखता है। संक्षेप में यदि कहा जाएं तो यह राजनैतिक इच्छा व सहभागिता के मेल से उपजा था। हिमाचल प्रदेश की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी महत्व रखती हैं।[11] यहाँ सहभागिता की परम्परा रहीं हैं, स्कूली शिक्षा का बच्चों के लिए जो महत्त्व है उसे यहाँ सभी सामाजिक मूल्यों की तरह मानते हैं, जनता ने सरकार पर बेहतर शिक्षा व्यवस्था के लिए अक्सर दबाव बनाया है, शिक्षकवर्ग व विद्यार्थिगणों में बहुत अधिक सामाजिक दूरी यहाँ नहीं रही हैं, पितृसत्तात्मकता की भावनाएँ यहाँ बहुत प्रबल नहीं रहीं है। राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाने वाला व्यय (शिक्षा पर) यहाँ शेष देश के राज्यों के मुकाबलें दुगुना है। इन तत्वों की सफलता इन्हें अनुकरणीय बनाती है किन्तु इन्हें सभी जगह रोपित करना व्यावहारिक भले न हो किन्तु सीख लेकर, प्रेरित होकर ऐसे ही प्रयास किए जा सकते हैं।

शिक्षा का अधिकार विधेयक को व्यापक एवं गुणवत्तापूर्ण तरीके से लागू करने के लिए शिक्षा की किसी अन्य शाखा की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि हम निःशुल्क और अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा के संवैधानिक संकल्प को पूरा करना चाहते हैं। अवरोधन और अपव्यय, सस्ते स्कूल भवन, बहुकक्षीय शिक्षण, पुराने स्कूलों को नयी शिक्षा के आदर्श के अनुसार परिणत करना आदि कुछ ऐसे विषय हैं, जिन पर शीघ्र ही शोध करने की आवश्यकता है। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य शिक्षा संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को इन विषयों पर विधिपूर्वक शोध करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को बालक की अन्तर्निहित प्रतिभा के प्रकाशन का उत्कृष्ट माध्यम निरूपित किया है। शिक्षा केवल सूचनाओं का संकलन मात्र न हो, शिक्षा जीवन्त होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा जितनी बेहतर होगी, समाज में मनुष्य का जीवन उतना ही गौरवमय, शान्तिपूर्ण एवं उन्नत होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[1]. ब्रजेश कुमार वर्मा, ''विकसित भारत एवं प्राथमिक शिक्षा'', शिक्षामित्र, आगरा, सितम्बर 2008, पृ. 15।
[2]. अनिल बोर्दिया, ''रिटर्न टु द रूट्स'', नया शिक्षक, शोध पत्रिका, बीकानेर, अप्रेल–जून, 1985, पृ. 74।
[3]. जॉन साइमन्स, ''हाउ इफेक्टिव इज स्कूलिंग इज प्रोमोटिंग लर्निंग?'' ए रिव्यू ऑफ द रिसर्च, वर्ल्ड बैंक, 1975।
[4]. स्नेहलता शुक्ला, ''एचीवमेंटस ऑफ इंडियन चिल्ड्रेन इन मदर टंग हिन्दी एण्ड साइंस'' कम्पेरेटिव एजूकेशन, वाल्यूम–18, नं. 2।
[5]. भारत का संविधान, भाग–4, राज्य की नीति के निर्देशक तत्व, धारा 45, राजभाषा खण्ड, विधायी विभाग, विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय : भारत सरकार, पृ. 15।
[6]. भारत सरकार, योजना आयोग, राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट, 2001, नई दिल्ली, मार्च, 2002 ,पृ. 194।
[7]. शिविरा पत्रिका, अक्टूबर, 2009, प्रकाशन–माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान, बीकानेर, पृ.20।
[8]. भारत सरकार, योजना आयोग, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना,

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. **ISSN: 2581-3501**

2007–2012, (नई दिल्ली, 2008), खण्ड–1।

[9]. मनोज सिन्हा, समकालीन भारत एक परिचय, प्रकाशन–ओरियंट ब्लेकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012, पृ. 196–197।

[10]. शिविरा पत्रिका, शिक्षा का अधिकार विशेषांक, जनवरी, 2012, अंक–7, पृ. 23–45।

[11]. डेरेज, जॉन एण्ड अमर्त्य सेन, इण्डिया इकोनोमिक डवलपमेन्ट एण्ड सॉशियल अपोर्च्यूनिटी, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 138।

© Eureka Journals 2015. All Rights Reserved. ISSN: 2581-3501